

क्या 'आरक्षण' भाजपा की नैया पार लगा पाएगा

प्रमोद जोशी

मोदी सरकार ने आम चुनाव से ठीक पहले 'आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों' के लिए आरक्षण का प्रस्ताव पास करके राजनीतिक धमाका किया है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि सर्वांग हिन्दू जातियों के बीच पार्टी का जनाधार हाल में कमजोर हो रहा था। पिछले दिनों एस.सी./एस.टी. एक्ट संशोधन के कारण यह वर्ग पार्टी से नाराज था। मध्य प्रदेश में इसका असर खासतौर से देखने को मिला। लाख टके का सवाल यह है कि क्या सरकार के इस फैसले से भाजपा के पक्ष में लहरें पैदा होंगी? कहना मुश्किल है कि यह फैसला लागू हो भी पाएगा या नहीं, पर राजनीतिक लिहाज से यह पेशकश आकर्षक जरूर है। तकरीबन हरेक पार्टी ने इसे समर्थन दिया है। हालांकि मोदी विरोधी मानते हैं कि यह चुनावी चाल है, पर वे इसका विरोध करने की स्थिति में नहीं हैं।

सवाल है कि क्या यह चाल भाजपा की नैया पार कराने में मददगार होगी? इस आरक्षण की राह में कुछ कानूनी दिक्कतें भी हैं इसलिए सरकार ने संविधान संशोधन का रास्ता पकड़ा है। कुछ विधि-विशेषज्ञ मानते हैं कि इसे अदालत की मंजूरी नहीं मिलेगी। यह राय सन् 1992 के इन्द्रा साहनी वाले मामले के कारण है। उस केस में नौ जजों की संविधान पीठ ने माना था कि देश में 'आर्थिक पिछड़ापन' आरक्षण का आधार नहीं हो सकता। आर्थिक आधार पर आरक्षण देने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में बदलाव की जरूरत इसीलिए महसूस की गई।

संविधान संशोधन क्यों

संविधान का अनुच्छेद 15 सभी नागरिकों को समानता का अधिकार देता है। आरक्षण से समानता के इस अधिकार का हनन होता है। इसलिए अनुच्छेद 15 (4) और 15 (5) में सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए विशेष उपबंध हैं। पर यहाँ 'आर्थिक पिछड़ेपन' का उल्लेख नहीं है। इन दोनों अनुच्छेदों में 'आर्थिक पिछड़ेपन' को जोड़ा गया है। हम जिस जातीय आरक्षण को देख रहे हैं उसके लिए भी संविधान में संशोधन करना पड़ा था। 1951 में संविधान के पहले संशोधन में



अनुच्छेद 15 में धारा 4 जोड़ी गई थी। संविधान में संशोधन करते वक्त एस.सी./एस.टी. का नाम साफ लिखा गया। साथ ही अनुच्छेद 366(24) (25) के तहत अनुच्छेद 341 और 342 में एस.सी./एस.टी. की परिभाषा भी कर दी गई। सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की परिभाषा नहीं की गई थी। इसे परिभाषित करने के लिए 1953 में काका कालेलकर आयोग और 1978 में बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में आयोग बनाए गए। दोनों आयोगों की रिपोर्टों में पिछड़ेपन का एक महत्वपूर्ण आधार जाति है। पर संविधान में 'जाति' शब्द से बचा गया है। ओ.बी.सी. जाति नहीं, वर्ग है, पर यह भी सच है कि ज्यादातर अदालती फैसलों में जाति एक महत्वपूर्ण बिन्दु है।

50 फीसदी की बाधा

इस आरक्षण के रास्ते में दूसरी बाधा है इसका 50 फीसदी की सीमा से ज्यादा होना। इन्द्रा साहनी मामले में अदालत ने यह सीमा निर्धारित की थी पर सरकार का कहना है कि यह सीमा 15(4) और 16(4) के अंतर्गत

सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए है। चूंकि इस संविधान संशोधन के कारण एक नया आर्थिक वर्ग तैयार हुआ है, जिसका टकराव शेष 50 फीसदी से नहीं है, इसलिए इस संशोधन को संवैधानिक बाधा पार करने में दिक्कत नहीं होगी।

सन् 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव की सरकार ने आर्थिक आधार पर 10 फीसदी आरक्षण का प्रस्ताव किया था, पर इन्द्रा साहनी केस में संविधान पीठ ने कहा था कि देश में आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण सम्भव नहीं है। अब यदि यह मामला न्यायिक समीक्षा के लिए जाएगा, तो कम से कम दो सालों पर अदालत को फैसला करना होगा। एक, क्या अनुच्छेद 15 और 16 में संशोधन संविधान के मौलिक ढांचे के अनुरूप हैं? दूसरे यह कि क्या 50 फीसदी की सीमा पार की जा सकती है?

राजनीतिक औजार

अतीत में कुछ राज्य सरकारों ने भी आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण देने की कोशिशें की थीं। आरक्षण आसान राजनीतिक औजार है, जिसका फायदा हरेक दल

उठाना चाहता है। इससे जुड़ी ज्यादातर घोषणाएं चुनावों के ठीक पहले होती हैं। गत वर्ष अप्रैल-मई में हुए कर्नाटक विधानसभा चुनाव के पहले खबरें थीं कि सिद्धमेया सरकार राज्य में पिछड़ों और दलितों के आरक्षण को 50 फीसदी से बढ़ाकर 70 फीसदी करना चाहती है। हालांकि आरक्षण 50 फीसदी से ज्यादा नहीं किया जा सकता, पर उन्होंने कहा कि हम इसे 70 फीसदी करेंगे। ऐसा तमिलनाडु में हुआ भी है, पर इसके लिए संविधान में 76वां संशोधन करने उसे नौवाँ अनुसूची में रखा गया ताकि अदालत में चुनौती नहीं दी जा सके।

मार्च 2015 में सुप्रीम कोर्ट ने जाटों को ओ.बी.सी. कोटा के तहत आरक्षण देने के केंद्र के फैसले को रद्द करने के साथ यह भी स्पष्ट किया था कि आरक्षण के लिए नए आधारों को भी खोजा जाना चाहिए। अदालत ने 'ट्रांसजेंडर' जैसे नए पिछड़े रूपा को ओ.बी.सी. के तहत लाने का सुझाव देकर इस पूरे विचार को एक नई दिशा भी दी थी।

सबल वर्गों की मांग

हाल के वर्षों में उन सामाजिक वर्गों ने आरक्षण की मांग की है, जो पहले से मजबूत हैं। तमाम राजनीतिक दल ऐसे खड़े होते जा रहे हैं जो किसी एक समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। हरियाणा के जाट-आंदोलन की प्रतिक्रिया देश के दूसरे इलाकों में हुई। राजस्थान के राजपूतों ने भी इसकी मांग की। राजस्थान में वसुंधरा राजे से पहले वाली अशोक गहलोत सरकार ने ओ.बी.सी. आयोग की रिपोर्ट के आधार पर कृषक राजपूत वर्ग को आरक्षण देने का निर्णय किया था। गुजरात के पाटीदार आंदोलन ने देश में आरक्षण को लेकर एक नई बहस छेड़ी।

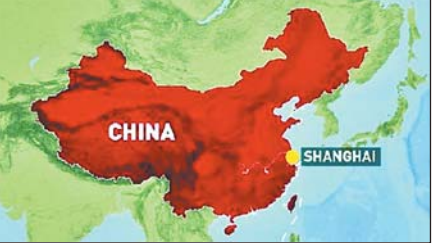
हाल में महाराष्ट्र में देवेन्द्र फडनवीस की सरकार ने मराठों को 16 फीसदी आरक्षण देने का फैसला किया है। उधर तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चन्द्रशेखर राव ने मुसलमानों के लिए आरक्षण की मांग की है। वहां विधानसभा में पहले ही पिछड़े मुसलमानों को आरक्षण देने का प्रस्ताव पेश हो चुका है। सबसे बड़ी बात यह है कि आर्थिक रूप से समर्थ समुदाय आरक्षण की मांग कर रहे हैं। राजस्थान में गुज्जर,आंध्र में कापू,गुजरात में पाटीदार और महाराष्ट्र में मराठा प्रभावशाली जातियां हैं।

चीन में इस्लाम को 'चीनी समाजवाद' का रूप देने की तैयारी

बलबीर पुंज

कश्मीर की तुलना में चीन में अलगाववादियों की स्थिति कैसी है, वह चीन द्वारा पारित एक कानून से स्पष्ट हो जाता है। इसके अंतर्गत, चीन कट्टरवाद और अलगाववादी गतिविधियों से निपटने की पृष्ठभूमि में अगले 5 वर्षों तक इस्लाम का चीनीकरण करेगा और उसे चीनी समाजवाद का रूप देगा। अर्थात् चीन में मुस्लिम समुदाय इस्लाम का पालन कैसे करे, उसके लिए चीनी मूल्यों वाले नियम-कानून बनाए जाएंगे।

चीन के सरकारी समाचारपत्र 'ग्लोबल टाइम्स' के अनुसार, 5 जनवरी को आठ इस्लामी संघों (वामपंथी समर्थित) के प्रतिनिधियों के साथ एक बैठक के बाद सरकारी चीनी अधिकारियों ने इस्लाम को समाजवाद के अनुकूल ढालने और उसके मजहबों क्रिया-कलापों को चीनी हिस्सा से करने के कदम को लागू करने के लिए सहमति व्यक्त की है। चीनी वित्तपोषण पर आश्रित और इस्लाम के नाम पर जन्मे पाकिस्तान द्वारा



बोते दिनों चीन में 'सरकार प्रायोजित मुस्लिम उत्पीड़न' का बचाव करने के बाद यह कानून आया है।

आक्रामक अभियान : राष्ट्रपति शी जिनपिंग के शासनकाल में चीन में इस्लाम को लेकर आक्रामक अभियान चल रहा है। चीनी मुस्लिमों को यहां नमाज पढ़ने, रोजा रखने, दाढ़ी बढ़ाने या महिला को हिजाब पहने पाए जाने पर गिरफ्तारी का सामना करना पड़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, चीन में 10 लाख से अधिक उइगर मुसलमानों को गुप्त शिविरों में रखे जाने का अनुमान है, जहां वे अपने मजहब की निंदा करने और आधिकारिक रूप से नास्तिक सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति निष्ठा रखने के लिए बाध्य हैं। अमरीकी सरकार का आकलन है कि अप्रैल 2017 से चीनी अधिकारियों ने उइगर, जातीय कजाक और अन्य मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदायों के कम से कम 8 लाख से 20 लाख सदस्यों को नजरबंदी शिविरों में अनिश्चितकाल के लिए बंद कर रखा है। अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन 'ह्यूमन राइट्स वॉच' ने गुप्त शिविरों में रह चुके 58 पीड़ितों का साक्षात्कार लिया था, जिससे शिनिजियांग में उइगर मुसलमानों को दी जाने वाली यातनाओं का खुलासा हुआ था। निर्देश नहीं मानने पर उन्हें घंटों भूखा रखा जाता है और एकतक कोठरियों में दिन-रात खड़े रहने की सजा देकर उन्हें मानसिक प्रताड़ना दी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी पूर्व सूचना या प्रक्रिया के किसी को भी हिरासत में ले लिया जाता है। रिपोर्ट के अनुसार, शिनिजियांग में इस्लामी अलगाववादियों और आतंकवाद से निपटने के नाम पर चीन ने क्षेत्र में रहने वाले अल्पसंख्यक उइगर मुसलमानों पर कठोर प्रतिबंध लगाए हैं और हाल के वर्षों में इन्हें और अधिक कड़ा भी किया है, जिसके अंतर्गत, यह इस्लामिक रीतियों के अनुपालन पर लानतार नजर रखी जाती है और अक्सर लोगों से उनकी प्रार्थना पढ़ावट को लेकर सवाल किए जाते हैं। यही नहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी अधिकारियों का नियमित दौरा होता रहता है, जिससे क्षेत्र में इस्लाम का अनुपालन लगभग वर्जित हो गया है।

कश्मीर की स्थिति : शिनिजियांग की तुलना में कश्मीर की स्थिति क्या है? चीन में मुस्लिम आबादी 2.1 करोड़ है, जिसमें अकेले शिनिजियांग में 85 लाख तुर्क मूल के उइगर मुसलमान बसते हैं, जो इस प्रांत की कुल आबादी का बड़ा हिस्सा हैं। जम्मू-कश्मीर की कुल जनसंख्या में मुस्लिम 68.31 प्रतिशत और अकेले कश्मीर क्षेत्र में 96.4 प्रतिशत हैं।

बोते 20 वर्षों से भी अधिक समय में इस कॉलम में कश्मीर को लेकर अनेकों बार चर्चा हो चुकी है। क्या कारण है कि देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की श्रेष्ठ अह्दुल्ला से गहरी मित्रता, इंदिरा गांधी की कूटनीति, वाजपेयी की इंसायनियत के दायरे में वार्ता की पहल, डॉ. मनमोहन सिंह के अथक प्रयासों से लेकर वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में हर सम्भव कोशिशों के बाद भी घाटी की स्थिति जस की तस बनी हुई है?

दुनिया के नक्शे पर कब चमकेगी हिन्दी

ऋतुपर्ण दवे

सच में 'हिन्दी' के लिए 'हिन्दी' में कुछ किया जाए तो अच्छा लगता है। जब सरहद के पार दीगर भाषा-भाषी हिन्दी के लिए कुछ करते हैं तो हम आश्चर्य मिश्रित भाव लिए ठगा-सा महसूस करते हैं। वाकई जिस दिन अंतरात्मा से हिन्दी बोलने में हम गर्व महसूस करेंगे तो हिन्दी कहाँ से कहाँ पहुँच जाएगी। विश्व हिन्दी दिवस का उद्देश्य भी कुछ यही है जिससे दुनिया में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वातावरण बनाना, प्रति प्रेम, अनुराग पैदा करना, हिन्दी की दशा के लिए जागरूकता फैला नई दिशा तक पहुँचाना तथा हिन्दी को वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित करना है।

अंग्रेजियत की मिलिक्यत के आगे यह कठिन दिखता है लेकिन यदि इसके लिए राजनीति से इतर हमारी दृढ़ इच्छा शक्ति रही तो वह दिन दूर नहीं जब दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की हिन्दी दुनिया के माथे की बिन्दी बनेगी।

यही सब हासिल करने के लिए विश्व हिन्दी दिवस की अवधारणा हुई थी। हालांकि पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित हुआ लेकिन आधिकारिक तौर पर हर वर्ष इसे मनाए जाने की घोषणा में 31 साल लग गए जो बेमानी रहा। ईमानदार कोशिशों की कमी से ही देश-दुनिया में हिन्दी को समृद्ध बनाने में काफी समय लग रहा है।

170 देशों में पढ़ाई व सिखाई जाती है

विश्व हिन्दी दिवस को हर वर्ष 10 जनवरी को मनाए जाने की घोषणा तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 2006 में कर इस दिशा में ठोस शुरुआत जरूर की और विदेश मंत्रालय ने दुनिया भर के भारतीय दूतावासों सहित सभी कार्यालयों में गरिमामय आयोजनों, गोष्ठियों,



परिचर्चाओं के माध्यम से सशक्त किए जाने के निर्देश दिए, लेकिन सरकारी तंत्र से ज्यादा परदेशियों ने इसको मान दिया तभी तो दुनिया के लगभग 170 देशों में किसी न किसी रूप में हिन्दी पढ़ाई और सिखाई जाती है। एक दुखद पहलु यह भी कि भारत में ही जहाँ कहीं हिन्दी का पूर्व में विरोध हुआ, उसके पीछे स्थानीय राजनीति ज्यादा थी। अब स्थिति काफी बदली हुई है। तमिलनाडु, मिजोरम, नागालैंड को ही लें, यहाँ हिन्दी बोलने और सिखाने हेतु बड़ी संख्या में इंस्टीच्यूट चल रहे हैं। वहीं अरुणाचल प्रदेश की एक प्रकार से राजभाषा ही हिन्दी है, जबकि नागालैंड ने दूसरी राजभाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता दी है। देश में

संयुक्त राष्ट्र संघ बनते समय केवल 4 राजभाषाएँ चीनी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी स्वीकृत की गई थीं जबकि 1973 में अरबी और स्पैनिश को भी सम्मिलित किया गया। संयोग और विडंबना देखिए, योग को 177 देशों का समर्थन मिला जो भारत के लिए गर्व की बात है लेकिन क्या हिन्दी के लिए 129 देशों का समर्थन नहीं जुटाया जा सकता? सरहदों के पार जापान, मिश्र, अरब, रूस में हिन्दी को लेकर कुछ ज्यादा ही सक्रियता दिख रही है। यह गर्व और बेहद सम्मान की बात है। लेकिन क्या प्रश्न बस यही कि भारत में ऐसा क्यों नहीं हो? यकीनन इसका जवाब बहुत ही कठिन होगा। अंग्रेजी बोलने में हमें गर्व होता है जबकि हिन्दी बोलने

दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा-मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- वर्धा जैसी कई संस्थाओं की हिंदी परीक्षाओं में बड़ी तादाद में लोग रुचि ले रहे हैं। दूसरी बड़ी सच्चाई यह भी कि हिन्दी को चुनौती अंग्रेजी मानसिकता वाले भारतीयों से है जिसे बदलना होगा।

संयुक्त राष्ट्र में राजभाषा नहीं बन पाई

हिन्दी को आज तक संयुक्त राष्ट्र संघ की राजभाषा नहीं बनाया जा सका। संयुक्त राष्ट्र ने 6 भाषाओं को राजभाषा का दर्जा दिया है। हालांकि

संयुक्त राष्ट्र संघ बनते समय केवल 4 राजभाषाएँ चीनी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी स्वीकृत की गई थीं जबकि 1973 में अरबी और स्पैनिश को भी सम्मिलित किया गया। संयोग और विडंबना देखिए, योग को 177 देशों का समर्थन मिला जो भारत के लिए गर्व की बात है लेकिन क्या हिन्दी के लिए 129 देशों का समर्थन नहीं जुटाया जा सकता? सरहदों के पार जापान, मिश्र, अरब, रूस में हिन्दी को लेकर कुछ ज्यादा ही सक्रियता दिख रही है। यह गर्व और बेहद सम्मान की बात है। लेकिन क्या प्रश्न बस यही कि भारत में ऐसा क्यों नहीं हो? यकीनन इसका जवाब बहुत ही कठिन होगा। अंग्रेजी बोलने में हमें गर्व होता है जबकि हिन्दी बोलने

में हीनता और जब तक इस भाव को हम पूरी तरह से निकाल नहीं देंगे, हिन्दी को सम्मान और सर्वमान्य भाषा के रूप में भला कैसे देख पाएंगे?

हिंदी पर अंग्रेजी भारी क्यों

विडंबना देखिए रोमन लिपि के 26 अक्षरों की अंग्रेजी, देवनागरी के 52 अक्षरों पर भारी है। कारण स्वयं की सर्वमान्य भाषा को लेकर बंटा होना, राजभाषा के प्रति गंभीर नहीं होना ही है। प्रान्त, भाषा और बोली को लेकर हम खुद धड़ेबाजी करते हैं और दूसरी और अंग्रेजी को तरक्की का जरिया मानते हैं। इस मिथक को तोड़ना होगा। काश! पहले पूरे भारत में संपर्क और सरकारी कामकाज की जरूरत हिन्दी बनती तो अपने आप विदेशों में भी इसका मान और सम्मान बढ़ता। आंकड़े बताते हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारों की 9 हजार के लगभग वैबसाइट्स हैं जो पहले अंग्रेजी में खुलती हैं फिर हिन्दी विकल्प आता है। यही हाल हिन्दी में कम्प्यूटर टाइपिंग का है।

चीन, रूस, जापान, फ्रांस, यू.ए.ई., पाकिस्तान, बंगलादेश सहित बहुत से दूसरे देश कम्प्यूटर पर अपनी भाषा और एक फॉन्ट में काम करते हैं लेकिन भारत में हिन्दी मुद्रण के ही कई फॉन्ट्स प्रचलित हैं जो दूसरे कम्प्यूटर में नहीं खुलते हैं। वहाँ कई हिन्दी समाचार-पत्रों में रोमन शब्दों को लिखने का हिन्दी चलन भी खूब हो चला है। यह हिन्दी के साथ अन्याय नहीं है? जरूरत है सर्वमान्य, ईमानदार पहल की। ऐसा हुआ तो हिन्दी की समृद्धि के भी अच्छे दिन आएंगे। हम किसी भी प्रान्त, जाति, धर्म के भाषा-भाषी क्यों न हों लेकिन जब बात एक देश की हो तो भाषा व लिपि भी एक ही जरूरी है क्योंकि भारत में वह हिन्दी ही तो है जो हर जगह समझी और बोली जाती है, बस जरूरत इतनी कि देशवासी इसे अंतर्मान से स्वीकारें।

ऊंची जातियों को आरक्षण या वोट-बचाओ कार्यक्रम?

अभय कुमार दुबे

ऊंची जातियों को दस फीसदी आरक्षण देने के फैसले को कुछ लोगों ने मोदी सरकार का मास्टर स्ट्रोक करार दिया है. ऐसा कहने वाले मान कर चल रहे हैं कि संसद में जैसे ही सरकार संविधान संशोधन विधेयक लायेगी, वैसे ही कांग्रेस समेत सारा का सारा विपक्ष में सांसत में फंस जाएगा. उसे या तो उस विधेयक का समर्थन करके उसके लिए दो तिहाई बहुमत मुहैया करा देना होगा, या फिर वह उसका विरोध करके ऊंची जातियों की नाराजगी मोल ले लेगा। अगर यह मान भी लिया जाए कि सब कुछ मोदी सरकार की मर्जी से ही होता चला जाएगा (हालांकि ऐसा होना राजनीति में नामुमकिन ही होता है), तो भी सोचने की बात यह है कि क्या ऊंची जातियों के वोटों की गारंटी मिलने से मोदी को 2014 में मिले 31 प्रतिशत वोटों में कोई बढ़ोतरी होगी? क्या यह ऊंची जातियों के वोटों को खो देने के डर से उठाना गया महज एक वोट-बचाओ कार्यक्रम नहीं है? कौन नहीं जानता कि पांच साल पहले पीएम मोदी को मिले वोटों में ऊंची जातियों का दिल खोल समर्थन शामिल था। दरअसल, उन्हें यह आरक्षण दे कर मोदी के रणनीतिकारों ने केवल अपना यह डर दूर करने की कोशिश की है कि कहीं ऊंची जातियों के



वोट उनके हाथ से फिसल न जाएँ. विधानसभा चुनावों से पहले वे मान कर चल रहे थे कि ऊंची जातियाँ कितनी भी नाराज हों, आखिर में वे भाजपा को ही वोट देंगी। लेकिन नतीजों के बाद वे समझ गए कि इन जातियों के पास और भी विकल्प हैं। भले ही वे किसी गैर-भाजपा पार्टी को वोट देना पसंद न करें, पर वे मतदान के दिन घर तो बैठ ही सकती हैं और वोट डालने निकलने पर नोटा का बटन तो दबा ही सकती हैं। दोनों ही सूतों में नुकसान भाजपा का ही होगा। इसलिए अगर मोदी की यह रणनीति कामयाब होती भी है, तो 31 प्रतिशत वोटों को अमित शाह के वाँछित 50 प्रतिशत वोटों की तरफ ले जाने वाली नहीं है। अगर मोदी को पिछली बार जितने वोट ही मिले तो गैर-भाजपा चुनावी एकता के बेहतर सूचकांक की स्थिति में भाजपा सत्ता को दौड़ में पिछड़ सकती है। ऊंची जातियों की भाजपा से नाराजगी का कारण केवल एससी-एसटी एक्ट पर उसका रवैया नहीं है। दरअसल, भाजपा का यह परम्परागत वोट बैंक पिछले पांच साल से देख रहा है कि मोदी के नेतृत्व में पूरी पार्टी का जम कर ओबीसीकरण हुआ है। ब्राह्मण-बनिया पार्टी की छवि बदलने के लिए मोदी द्वारा किये गये प्रयासों के कारण भाजपा ने वह संतुलन खो दिया जिसके तहत वह दीनदयाल उपाध्याय के जमाने से ही ऊंची जातियों और पिछड़ों के एक हिस्से का चुनावी गठजोड़ हासिल करती रही है।

चूल्हों के पीछे बन गए 'बंकर'

जोगिन्द्र संघ

जिंदगी रूपी 'मासूम-बोट' को खूनी पंजों में जकड़ने के लिए सीमा पार से 'खौफ के पंख' कई दशकों से फड़फड़ा रहे हैं और इस खतरे से बचाव हेतु कई प्रयास भी साथ-साथ किए गए। अब जम्मू-कश्मीर के सीमांत क्षेत्रों में स्थित गांवों के लोगों को पाकिस्तानी सैनिकों की गोलीबारी से सुरक्षित रखने के लिए घरों में बंकरों के निर्माण को अमल में लाया जा रहा है। इन बंकरों को देखने का अवसर तब मिला जब 'पंजाब केसरी' की राहत टीम ने साम्बा सैक्टर में उन लोगों तक पहुंच की, जिनके घरों की दीवारें अक्सर गोलीबारी से कांपती रहती हैं। सीमा के बिल्कुल किनारे पर स्थित एक ऐसे ही गांव में देखा कि घरों के आंगनों में जहां रोटी-सब्जी बनाने के लिए चूल्हे बने हुए हैं, उनके पिछली ओर कंकरीट के बंकर बनाए जा रहे हैं ताकि गोलीबारी के समय पारिवारिक सदस्य वहां शरण ले सकें। इन बंकरों के निर्माण का सारा खर्च सरकार द्वारा दिया जा रहा है। जिन लोगों के पास बंकर बनाने के लिए जगह नहीं है, उनके लिए ऐसा प्रबंध स्कूल या अन्य किसी सार्वजनिक स्थान पर किया जा रहा है।



500 मीटर की दूरी पर ही सीमा है। मैदानी इलाका होने के कारण सीमा के आरपार स्पष्ट देखा जा सकता है। जब इस क्षेत्र में तार-बाड़ नहीं थी और सुरक्षा के प्रबंध भी अधिक कड़े नहीं थे तो लोग अक्सर आर-पार आ-जा सकते थे। तब दोनों ओर के कुछ लोग इस अवगमन का जायज-नाजायज लाभ भी उठा लेते थे तथा कश्मिर ने तो अपने हाथ भी रंग लिए।

गांव में सुरक्षा चौकी : नंगा नामक इस गांव में सीमा सुरक्षा बल की एक

चौकी भी बनी हुई है। सुरक्षा कर्मचारी अपनी जान पर खेल कर सीमा की सुरक्षा करते हैं तथा अपने नागरिकों की सुरक्षा का फर्ज भी निभाते हैं। राहत टीम के सदस्यों ने वहां तैनात जवानों तथा

गांववासियों को भी इसके प्रति प्रोत्साहित करते हैं। गांवों की युवा पीढ़ी ऐसे प्रयासों में आगे होकर भूमिका निभाती है।

युवाओं में 'उडारी' मारने की इच्छा : सीमांत क्षेत्र के गांवों में कुछ परिवार ऐसे हैं जिनकी आर्थिक स्थिति मजबूत है। इसकी झलक उनके घरों से भी मिलती है। इन लोगों में खड़ी कारों से भी। ऐसे घरों के बच्चे स्कूलों की पढ़ाई करके ही मन में विदेशों की 'उडारी' मारने की इच्छा पाल लेते हैं। कालेजों में जाकर उनकी यह इच्छा और भी बलवती हो जाती है। सीमांत गांव के एक युवक ने बताया कि उसके बहुत से साथी विदेशों में चले गए हैं तथा वह खुद भी पढ़ने के लिए बाहर जाने की तैयारी कर रहा है। सीमांत गांवों के हालात बहुत खराब हैं, जहां अक्सर गोलीबारी होती रहती है। रोजगार के भी कोई दिखने नहीं तथा नौकरियां भी नहीं मिलतीं। इस स्थिति के कारण ही युवाओं में विदेशों के प्रति रझान बढ़ रहा है।

गोलियों से बचाएंगे पेड़ : सीमांत गांवों में पाकिस्तान की ओर से आती गोलाबारी से बचाव के लिए जहां बंकर बनाए जा रहे हैं, वहीं बड़ी संख्या में पेड़ लगाए जाने की भी जरूरत महसूस की जा रही है।

